इकाई 39 नियोजन और भूमि सुधार

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 कृषि नीति और स्वतंत्रता आंदोलन
39.3 स्वतंत्रता पूर्व भूमि व्यवस्था
39.4 भूमि सुधारों का नियोजन
 39.4.1 बिचौलियों का उन्मूलन
 39.4.2 भूमि हदबन्दी
 39.4.3 अन्य उपाय
39.5 भूमि सुधारों के सामाजिक परिणाम
39.6 सारांश
39.7 शब्दावली
39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- भारतीय कृषि के प्रति अंग्रेज़ों की नीति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- आज़ादी के समय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान भूमि व्यवस्था से परिचित हो सकेंगे,
- 1947 के उपरांत भारत सरकार द्वारा कृषि विकास के लिए अपनाये गये विभिन्न उपायों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और
- ग्रामीण समाज पर इन उपायों से पड़ने वाले प्रभावों को इंगित कर सकेंगे।

39.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि हमारे देश में आज़ादी के बाद आरंभ हुई नियोजन प्रक्रिया को ग्रामीण समाज में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के लिए किस प्रकार प्रयुक्त किया गया। इस दिशा में उठाए गये कदम मुख्यतः भूमि सुधार, जैसे बिचौलियों का उन्मूलन तथा काश्तकारों को भूमि अधिकार देने की सुरक्षा आदि से संबंधित थे। इसके साथ ही कृषि विकास के लिए भूमि प्रबंध को सुधारा गया। इस प्रक्रिया में प्रशासनिक एवं भूमि संबंधी पुनर्गठन भी किया गया। नियोजन के संदर्भ में भूमि सुधारों को दो स्तरों पर देखा जाना चाहिए।

- भूमि स्वामित्व की संरचना में संस्थागत परिवर्तन तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास में इसकी उत्पादन संबंधित उपयोगिता
- कृषि अर्थव्यवस्था की प्रशासनिक एवं तकनीकी प्रक्रियाओं में हुए परिवर्तन जिनसे किसानों एवं खेतिहर मज़दूरों के सामाजिक कल्याण के लिये भूमि सुधारों द्वारा किये जा रहे संस्थागत उपायों का भरपूर उपयोग किया जा सके।

दोनों उपाय परस्पर संबंधित थे लेकिन संस्थागत पक्ष को इस प्रक्रिया में प्राथमिकता मिली। यह स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान प्रस्फुटित हुई ऐतिहासिक शक्तियों की उपज थी। कई दशकों तक चलने वाले आंदोलन ने भारत में एक कृषि नीति तथा ग्रामीण क्षेत्र के

सामाजिक एवं आर्थिक विकास की नीति उभारने का मार्ग प्रशस्त किया। इस नीति को तैयार करने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक राजनीतिक पार्टी तथा राष्ट्रीय आंदोलन दोनों हैसियतों से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

39.2 कृषि नीति तथा स्वतंत्रता आंदोलन

भारत में अंग्रेज़ी राज्य ने, जिसे समाप्त करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वतंत्रता आंदोलन चलाया, भारतीय अर्थ व्यवस्था के अंतर्गत कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में गंभीर अवरोध खड़े किए। अंग्रेज़ों की नीतियों के कारण भारत में उद्योग नष्ट होने लगे। इन्हीं नीतियों के कारण भूमि सम्बंधी विशेष अधिकार प्रदान करने का सिलसिला शुरू हुआ जो कि स्वभावतः शोषण जनित एवं ग़ैर उत्पादक प्रक्रिया थी। निस्संदेह भारतीय कृषि संरचना के सुव्यवस्थित अध्ययन में अंग्रेज़ों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, किंतु इस अध्ययन का मूल उद्देश्य अधिक से अधिक मात्रा में भू-राजस्व वसूली था। उदाहरण के लिए **बैडेन पॉवेल** ने अपनी पुस्तक **द लैंड सिस्टम ऑफ़ ब्रिटिश इण्डिया (1892)** में भारत में भूमि व्यवस्था, ग्रामीण समुदायों के उद्भव एवं विकास तथा उनकी आंचलिक विभिन्नताओं की विस्तृत व्याख्या की है तथा हेनरी एस. मैने ने अपनी पुस्तक **द विलेज कम्युनिटीज़ इन ईस्ट एण्ड वेस्ट (1876)** में ग्रामीण सामाजिक संरचना, भूमि संबंध तथा भूमि अधिकार का भारतीय तथा ब्रिटेन की पृष्ठभूमि में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है किंतु विश्लेषण तथा ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययनों के प्रयासों के पीछे परिवर्तन अथवा सुधारों के उद्देश्य नहीं थे। यही नहीं 1928 में गठित कृषि पर रॉयल कमीशन की रिपोर्ट जो कि "ग्रामीण जनता के कल्याण एवं विकास को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कृषि में सुधारों की सिफारिश" की ओर लक्षित थी उसने अपना दायरा सीमित रखा। इसका कारण यह था कि कमीशन को यह निर्देश था कि वह मौजूदा भूमिस्वामित्व तथा काश्तकारी अथवा भू-राजस्व व सिंचाई की दरें तय करने के संदर्भ में किसी प्रकार की सिफारिशें न भेजें। औपनिवेशिक सरकार के राजस्व को क्षति पहुँचा कर ग्रामीण जनता के कल्याण का प्रयास नहीं किया जा सकता था। भूमि व्यवस्था की अंग्रेज़ी नीति का प्रत्यक्ष उद्देश्य अधिकतम भू-राजस्व एकत्र करना था जो कि बहुधा काश्तकारों के परंपरागत तथा मान्य अधिकारों का उल्लंघन करके किया जाता था, विशेष कर ज़मीन के जोतदारों का। यह नीति ज़मीन पर विभिन्न स्तर के अधिकारों के साथ भूस्वामियों की नयी श्रेणियों का कृत्रिम सृजन कर रही थी। इसका एकमात्र उद्देश्य अधिक से अधिक भू-राजस्व एकत्रित करना था। इस प्रक्रिया का विस्तृत ब्योरा आज़ादी के तुरंत बाद उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित ज़मींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट (1948) में उपलब्ध है। इसमें अंग्रेज़ी भूमि व्यवस्था का सांख्यिकीय और ऐतिहासिक मूल्यांकन किया गया है और भूमि व्यवस्था संबंधी कुछ आंकड़े भी प्रस्तुत किए गये हैं। इस रिपोर्ट में इस बात का ज़िक्र है कि किस प्रकार अंग्रेज़ों ने एक वर्ग को ज़मीन के अधिकारों से सम्मानित कर किसान और सरकार के बीच बिचौलियों के रूप में खड़ा किया था। भू-राजस्व वसूली की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उन्हें ज़मींदार कहा जाता था। ज़मींदारी व्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से वैधानिक मान्यता दी गयी। यह वैधानिक मान्यता अंग्रेज़ों की वित्तीय और प्रशासनिक सुविधा के तहत प्रदान की गयी। यह तथ्य एरिक स्टोक्स के अध्ययन में स्पष्ट होकर सामने आता है। उन्होंने डी. टी. रोवर्ट का हवाला दिया है, "कोई व्यक्ति ज़मींदार है या नियत मूल्य देने वाला जोतदार या दाखिलदार, यह सब शुद्ध रूप से तकनीकी और वैधानिक मसला है। मूल बात यह है कि वह भूमि वाजिब या ग़ैर वाजिब दरों पर उसके पास जोत है या नहीं और यह जोत पर्याप्त है या नहीं।"

विभिन्न नामों से विभिन्न प्रांतों में ज़मींदारी अधिकारों की स्थापना से एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसका भूमि पर अधिकार था और वह अंग्रेज़ सरकार को भू-राजस्व दिया करता था। वे मनमाने और अनियमित तरीके से कर वसूल करते थे और किसानों, खेतिहर मज़दूरों और जोतदारों का शोषण करते थे। देश के अधिकांश हिस्सों में इस वर्ग और इसके आर्थिक और सामाजिक शोषण के ख़िलाफ़ कृषक आंदोलन हुए। (इकाई 7 और 28 में आपने इसका अध्ययन किया है)। अपनी प्रकृति में राजनीतिक होते हुए भी भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस इन परजीवी संस्थाओं के उन्मूलन और सुधार के लिए कृत्त संकल्प थी। इस प्रेरणा के पीछे गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव था।

- भारत में नियोजन और अर्थशास्त्रीय प्रशासन का केन्द्र गांव होना चाहिए,
- पंचायत और स्थानीय निकायों के माध्यम से इसे स्वशासन का अधिकार मिलना चाहिए,
- खेत जोतने वाले का ज़मीन पर अधिकार होना चाहिए,
- भूमि से जुड़े हुए सभी प्रकार के वार्षिकीभोगी और शोषण संबंधों की समाप्ति होनी चाहिए।

गांधी जी ने ग्रामीण-शहरी आर्थिक संबंधों के ऐसे पारस्परिक सहयोग और सह अस्तित्व की वकालत की जिसमें एक, दूसरे पर पूरी तरह निर्भरता न हो और न ही शोषण की गुंजाइश हो। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने कुछ सुधारों के बाद इस नीति को अपना लिया। कांग्रेस के औपचारिक प्रस्तावों और रिपोर्टों से यह स्पष्ट है। (उदाहरण के लिए इकाई 30 में फ़ैज़पुर कृषि कार्यक्रम देखिए)

आज़ादी के तुरंत बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष ने 1949 में कांग्रेस कृषि सुधार समिति गठित की ताकि भारत में भूमि सुधार की विस्तृत नीति बनायी जा सके। इसमें ज़मीदारी, ताल्लुकेदारी और जागीरदारी आदि बिचौलियों के अधिकारों की समाप्ति का प्रस्ताव रखा गया। इसके अतिरिक्त इस समिति ने सहकारी संगठनों के माध्यम से खेती करने पर बल दिया। इसने किसानों की जोतों की न्यूनतम और अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी ताकि कृषि विकास और ग्रामीण समृद्धि तेज़ी से हो सके। इसके लिए गांवों में प्रशासनिक और विकासात्मक संस्थाओं की स्थापना का भी प्रावधान रखा गया। इस समिति ने सहकारी समिति द्वारा पूरे गांव की खेती सामूहिक रूप से करने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर पूरे देश में काफी बहस हुई। इस बहस में कांग्रेस पार्टी के अन्दर से ही दो प्रकार के विचार सामने आये। एक वर्ग सहकारी खेती तथा दूसरा व्यक्तिगत किसान परिवार द्वारा खेती पर बल दे रहा था। इस विवाद में स्पष्ट रूप से भारत में दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आये।

- पहला दृष्टिकोण सामुदायिक दर्शन पर आधारित है जिसका तर्क है कि भूमि सामुदायिक सम्पत्ति है न कि व्यक्तिगत।
- दूसरा दृष्टिकोण पूंजीवादी है, जिसके अनुसार भूमि व्यक्तिगत या पारिवारिक संपत्ति है।

भारत के भूमि सुधारों में व्यक्तिगत या पारिवारिक अधिकार के दर्शन को वरीयता प्राप्त हुई, हालाँकि भूमि सुधार नीतियों में सामुदायिक दर्शन को समाविष्ट करने की चेष्टा भी की गयी। गांधी जी के शिष्य आचार्य विनोबा भावे ने सामुदायिक अधिकार के सवाल पर राष्ट्रव्यापी आंदोलन शुरू किया जिसे सर्वोदय आन्दोलन के रूप में जाना जाता है। सर्वोदय स्वेच्छा से प्रेरित और गैर सरकारी आन्दोलन था। यह आंदोलन उसी समय छेड़ा गया था, जब भूमि सुधार संबंधी नीतियाँ बनायी और कार्यान्वित की जा रही थीं (1950 के दशक के आरंभिक वर्षों में)।

39.3 स्वतंत्रता पूर्व भूमि व्यवस्था

भारत में नियोजन के दौरान लाये गये भूमि सुधारों की प्रकृति को समझने के पहले यह आवश्यक है कि हम आज़ादी के समय मौजूद भूमि व्यवस्था की प्रकृति को समझ लें। इस समय दो प्रकार की भूमि व्यवस्था मौजूद थी—ज़मीदारी और रैयतवाड़ी। देश के विभिन्न क्षेत्रों में यही दो भूमि व्यवस्थाएं स्थापित थीं। ये व्यवस्थाएं एक तरफ काश्तकार और सरकार के बीच और दूसरी तरफ काश्तकार और जोतदार और खेतिहर मज़दूरों के बीच संबंधों का निर्धारण करती थीं। काश्तकारों के अधिकारों को कानून और रीति रिवाज की सहायता से संस्थागत रूप दे दिया गया था। काश्तकार जोतदारों से भू-राजस्व वसूल करके सरकार को उसका हिस्सा प्रदान किया करते थे। जोतदार कानून और रीति-रिवाज से बंधे

होने के कारण काश्तकारों द्वारा तय किया गया लगान देने के लिए बाध्य था। इसके अतिरिक्त जोतदारों को काश्तकारों के खेतों में बेगार करना पड़ता था और विशेष आयोजनों पर सामग्री के रूप में कर देना पड़ता था।

ज़मीदारी प्रथा उत्तर भारतीय राज्यों और रैयतवाड़ी दक्षिणी और पश्चिमी भारत में मौजूद थी। ज़मीदारी व्यवस्था में भूमि पर कुछ ऐसे लोगों का अधिकार हो गया जो खुद खेती नहीं करते थे, लेकिन उनकी विशेषता यह थी कि वे अपने इलाके के प्रभावशाली लोग थे जिनमें जोतदारों से लगान वसूल करने की शक्ति थी। अंग्रेज़ भू-राजस्व अधिकारी अस्थायी (सामान्यतः 30 वर्षों के लिए) या स्थायी आधार पर "भूमि व्यवस्था" किया करते थे। इस संस्था के निर्माण से एक विदेशी साम्राज्य भारतीय किसानों के सम्पर्क में आये बिना लगान वसूल करने में सफल रहा। इससे एक नये ज़मीदारी वर्ग का उदय हुआ। कुछ स्थितियों में प्रारंभिक काश्तकारों को ही स्वीकार कर लिया गया। इस व्यवस्था में तीन प्रकार के हित एक साथ काम कर रहे थे—

- वह सरकार जो भू-राजस्व प्राप्त करती थी,
- वह ज़मीदार जो जोतदारों से भू-राजस्व वसूल करता था,
- जोतदार जो भू-राजस्व देता था और ज़मीदार की सेवा करता था।

इनके अतिरिक्त संयुक्त प्रांत में जिसे आज हम उत्तर प्रदेश के नाम से जानते हैं, एक अलग तरह की ज़मीदारी व्यवस्था मौजूद थी।

ज़मीदारी व्यवस्था का एक दूसरा रूप जागीरदारी व्यवस्था था। देश के अनेक हिस्सों में राजाओं ने अपने दरबारियों एवं सामन्तों के ज़िम्मे ज़मीन छोड़ दी थी। राजस्थान और हैदराबाद राज्य ऐसे उदाहरण हैं, हालांकि देश के दूसरे हिस्सों में भी यह व्यवस्था मौजूद थी। जागीरदारी व्यवस्था में लगान और नज़राना पेश करने के अतिरिक्त कुछ प्रशासनिक और सैनिक सेवाएं भी उपलब्ध करानी पड़ती थी। जागीरदार ज़मीन के मालिक नहीं होते थे बल्कि अपने मालिक की तरफ से लगान वसूल करने के लिए प्रशासक की भूमिका निभाते थे।

इस व्यवस्था में भूमि संबंध निम्नलिखित प्रकार का था :

i) पहला, वह राज्य अथवा रियासत जो जागीरदार को उसकी सेवा और दायित्व के लिए जागीरदारी अधिकार प्रदान करती थी।
ii) दूसरा, जागीरदार लगान वसूलने का अधिकार एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह को दे देता था जो उसे लगान वसूल करके देता था।
iii) तीसरा, ज़मीन का मालिक पट्टे पर जोतदारों को लगान वसूल करने के लिए भूमि देता था।

इस व्यवस्था में जोतदारों का अपने मालिक के साथ संबंध ज़मीदारी व्यवस्था से भिन्न नहीं था, ख़ासकर आर्थिक और सामाजिक दायित्वों के संदर्भ में।

रैयतवाड़ी व्यवस्था ज़मीदारी व्यवस्था से भिन्न थी क्योंकि इसमें किसान खुद मालिक था और बिचौलियों की इसमें कोई भूमिका नहीं थी। जोतदार ही अपनी जोत का मालिक था और वह सीधे सरकार को भू-राजस्व दिया करता था। हालांकि बाद में बाज़ारी ताकतों के दबाव, जैसे रेल और सड़कों का विस्तार और कई प्रकार के सामाजिक और आर्थिक कारणों से जोतदारों की कंगाली से एक नया आयाम सामने आया। खुद लगान न देने की स्थिति में ये लोग अपनी ज़मीन काश्तकारों के पास रेहन रखने लगे। इस प्रक्रिया में उत्तरी राज्यों की ज़मीदारी प्रथा की झलक इस व्यवस्था में भी मिलने लगी। रैयतवाड़ी व्यवस्था बम्बई और मद्रास प्रेसीडैन्सी और हैदराबाद के कुछ हिस्सों में मौजूद थी। ज़मीदारी और रैयतवाड़ी काश्तकारी भूधारण व्यवस्था में अन्तर होते हुए भी इनमें एक आधारभूत समानता यह थी कि ये सामाजिक शोषण संबंधों पर आधारित थे और इन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक अनउत्पादक वातावरण तैयार किया :

- लगान का संबंध प्रति एकड़ उपज के मूल्य से बिल्कुल नहीं था।
- काश्तकार-जोतदारों को प्राप्त भूमि की अवधि की अनिश्चितता के कारण भी कृषि में निवेश (लागत) को धक्का पहुँचा।

- मालिक केवल लगान वसूलने की ताक में रहते थे और शोषण के तरीके अपनाते थे।
- जनसंख्या पर दबाव पड़ने से जोतों का उपविभाजन हुआ और इससे जोतदारों के पास इतना अधिशेष नहीं बच पाता था कि वे उसे भूमि में निवेशित करें।

इस प्रकार भूमि व्यवस्था की गुणवत्ता और कृषि उत्पादन में भारी कमी आई। इससे खेती में उस परम्परागत तकनीक का ही इस्तेमाल होता रहा जिसे भारतीय किसान सैकड़ों वर्षों से अपनाता चला आ रहा था। इससे कृषि अर्थव्यवस्था दुहरे संकट में फँस गयी।

i) पहला, कृषि में सामाजिक संबंध शोषण और दमन पर आधारित हो गया,
ii) दूसरे, भारत में प्रति एकड़ उत्पादकता काफी गिर गयी।

इन सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को दूर करने के लिए आज़ादी के बाद भारत में योजना और भूमि सुधारों का सूत्रपात हुआ।

बोध प्रश्न 1

1) आज़ादी के पहले की भूमि व्यवस्था का उल्लेख दस पंक्तियों में करें

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) 1947 के बाद कांग्रेस में खेती के ढांचे से संबंधित चल रहे विवाद का ज़िक्र पांच पंक्तियों में करें।

....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही (✓) और ग़लत (X) का निशान लगायें।
   i) भूमि व्यवस्था की अंग्रेज़ी नीति का उद्देश्य भारतीय कृषि का विकास करना था।
   ii) अंग्रेज़ों की नीति के फलस्वरूप सरकार और जोतदार के बीच बिचौलियों का वर्ग निर्मित हुआ।
   iii) कांग्रेस कृषि सुधार समिति का गठन भारत में प्रभावकारी भूमि सुधारों की कार्यनीति तैयार करने के लिए किया गया था।
   iv) 1947 के पहले की विभिन्न भू-व्यवस्थाओं से भूमि की उत्पादकता (उपज) में वृद्धि हुई।

39.4 भूमि सुधारों की योजना

स्वतंत्रता के बाद योजना बनाते समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में बनी कृषि नीति और भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक समस्या को ध्यान में रखा गया। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारतीय कृषि के पतन का मुख्य कारण ज़मींदारी, जागीरदारी और रैयतवाड़ी व्यवस्था है लेकिन इसके अतिरिक्त हमारी सामाजिक और आर्थिक संरचना भी कृषि के पतन के लिए ज़िम्मेदार है। मसलन रोज़गार के अन्य साधन उपलब्ध न होने के कारण कृषि पर जनसंख्या का दवाब बढ़ना। इससे प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात असंतुलित हुआ और परिणामस्वरूप जोतों का उपविभाजन होने लगा। प्रथम, कृषि श्रम जाँच पड़ताल (1951) ने स्पष्ट किया है "कुल कृषक परिवारों में 20% लोग भूमिहीन मज़दूर हैं। जिनके पास जोतने के लिए ज़मीन है, उनमें से 38 प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास 2.5 एकड़ से भी कम ज़मीन है और खेती योग्य भूमि के 6 प्रतिशत हिस्से पर ही इनका अधिकार है। खेती करने वाले परिवारों में 59 प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास 5 एकड़ से भी कम ज़मीन है और यह कुल खेती योग्य ज़मीन का 16 प्रतिशत है।"

जोतों का उपविभाजन भी एक बदसूरत तस्वीर प्रस्तुत करता है। भारत सरकार के द फार्म मैनेजमेंट स्टडीज़ में स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में ढाई एकड़ जोत के औसतन 3.6 टुकड़े हुए हैं। 200 से 25 एकड़ तक के बड़े जोतों की भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। और इसका औसतन 17 टुकड़ों में विभाजन हुआ है। खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे होने की समस्या को चकबन्दी के माध्यम से सुलझाया जा रहा है। कृषि संबंधी अन्य संरचनात्मक समस्याओं का संबंध आधुनिकीकरण द्वारा भूमि के अधिकतम उपयोग और खेती करने के तरीके से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त सिंचाई, खाद, भूमि की उर्वरता में कमी आदि समस्याएं भी कृषि के सामने हैं। आधुनिकीकरण के ये मुद्दे भूमि सुधारों के संस्थागत पहलू से जुड़े हुए हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद योजना आयोग, केन्द्रीय सरकार और अन्य राज्य सरकारों ने भूमि सुधारों के बृहत् कार्यक्रमों को जारी किया। इसके अन्तर्गत मिलकियत ढाँचे में संस्थागत और संरचनात्मक परिवर्तन किये गये, भू स्वामित्व की नयी अवधारणा सामने आयी, कृषि क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की मांग की गयी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक स्तर पर सहायता पहुँचाने वाले संस्थानों का गठन किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू होने के तुरन्त बाद 1950 के दशक में ये कार्यक्रम आरंभ किये गये।

भूमि सुधार कार्यक्रम में निम्नलिखित कदम उठाये गये —
- बिचौलियों का उन्मूलन
- काश्तकारी सुधार और
- भूमि अधिग्रहण के लिए भूमि जोतों की सीमा का निर्धारण।

इन सुधारों का एकमात्र उद्देश्य था—भारतीय किसान को ज़मीदार और जागीरदार जैसे बिचौलियों के चंगुल से मुक्त करना और उनकी ज़मीन को सुरक्षा प्रदान करना ताकि कृषि के आधुनिकीकरण के लिए वे उसमें पूँजी लगा सकें।

39.4.1 बिचौलियों का उन्मूलन

बिचौलियों का उन्मूलन भूमि सुधार का एक प्रमुख कदम था। यह वर्ग, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं भूमि के विकास के लिए बिना कोई पूँजी निवेश किये हुए, जोतदारों से मनमानी रकम वसूल करते थे। वे अपने व्यक्तिगत ऐशोआराम और शान शौकत के लिए किसानों से अतिरिक्त कर वसूल करते थे, मसलन घोड़े, हाथी खरीदने के लिए, अपने परिवार में जन्म, विवाह और अन्य खुशियां मनाने के लिए। कभी-कभी ज़मीदार या जागीरदार अपने शौक के लिए भी कर वसूल करते थे। लगान और कर की वसूली ज़मीदार के कारिन्दों द्वारा बड़े रूखे और कभी-कभी क्रूर ढंग से की जाती थी। लगान न देने या देर से देने की स्थिति में ज़मीन से बेदखल करना आम बात थी। किसानों को दिया हुआ काश्तकारी अधिकार ज़मीदारों या जागीरदारों की मर्ज़ी पर आधारित था। वे किसान को कभी भी उनकी भूमि से बेदख़ल कर सकते थे। बाद में भारत के कुछ हिस्सों में ऐसी

काश्तकारी की व्यवस्था की गयी जिसमें किसान को उसकी भूमि से विशेष परिस्थितियों में और वह भी केवल कानून की प्रक्रिया के द्वारा हटाया जा सकता था लेकिन इस प्रकार के काश्तकारों की अवधि भी ज़मीदारों की रज़ामन्दी पर आधारित थी क्योंकि ज़मीदार बहुत चालाकी से किसानों को उनकी ज़मीन से बेदख़ल कर देता था।

भूमि सुधार का पहला कदम इस प्रकार के बिचौलियों का (उत्तर प्रदेश में ज़मीदारी उन्मूलन अधिनियम) उन्मूलन था जो कई शताब्दियों से गाँवों में समृद्ध और शक्तिशाली बने हुए थे। भूमि सुधार के अतिरिक्त यह एक समाज सुधार भी था क्योंकि पहली बार कारीगरों, मज़दूरों और किसानों को बिचौलियों के बंधन से मुक्ति मिली। चाहे, ज़मीदार हों या ताल्लुकेदार, बिचौलियों के अधिकार सरकार द्वारा ले लिये गये। अब काश्तकार सरकार को सीधे लगान देने के लिए उत्तरदायी हो गये। इसके अतिरिक्त गाँवों की साझी भूमि जिसे पहले भूमिपतियों की सम्पत्ति माना जाता था या जिनका उस पर नियंत्रण रहता था, जैसे घर बनाने की जगह (आबादी भूमि) चारागाह, जंगल, तालाब, झील आदि पर से ज़मीदारों का नियंत्रण समाप्त कर दिया गया और इसे ग्राम पंचायतों के ज़िम्मे सौंप दिया गया।

भूमि सुधारों के साथ-साथ ग्राम पंचायत व्यवस्था भी लागू की गयी जो निर्वाचक सिद्धांत के व्यापक मताधिकार पर आधारित थी। ग्रामीण स्तर के भूमि संसाधनों पर ग्रामीण पंचायत का नियंत्रण हो गया। ग्राम पंचायत के अध्यक्ष को मुखिया या प्रधान कहते हैं जो चुनाव द्वारा चुना जाता है। इस कदम का भी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक महत्व है। ज़मीदारों जैसे बिचौलिये वर्ग के उन्मूलन, भूमि सुधार और इसके साथ-साथ ग्राम पंचायतों की स्थापना से ग्रामीण जीवन में एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया। सामाजिक रूप से देखें तो ज़मीदारी प्रथा के उन्मूलन का अर्थ था—एक बड़ी संख्या में ग्रामीण काश्तकारों, कारीगर और मज़दूरों आदि का शोषण से मुक्त होना। राजनीतिक रूप से इसने ग्राम पंचायत के चुनाव का आधार निर्मित किया। यह चुनाव वयस्क मताधिकार पर आधारित था, जिसमें किसी प्रकार के विशेषाधिकार या जाति, धर्म आदि के आधार पर भेदभाव को स्थान नहीं दिया गया था। इसने लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को मज़बूत किया और देश में मताधिकार पर आधारित राजनीति को लागू करने में मदद की, जो नागरिक अधिकारों, व्यापक मताधिकार, समानता और स्वतंत्रता जैसे सिद्धांतों पर आधारित थी।

दूसरी तरफ बिचौलियों को उनके काश्तकारी अधिकारों का मुआवज़ा दिया गया, जिसे सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया था। फिर भी, उनके पास वह ज़मीन रह गयी, जिस पर वे खुद खेती करते या करवाते थे। इसे खुदकाश्त ज़मीन कहते थे। काश्तकार ज़मीदारी उन्मूलन के पहले भूमिपतियों को लगान देते थे। आज़ादी के बाद उन्हें सिरदार का अधिकार दिया गया, उन्हें भूमि जोतने का स्थायी अधिकार दिया गया, पर वे वह ज़मीन बेच नहीं सकते थे। जिन लोगों ने एक वर्ष के लगान का दस गुना अदा किया उन्हें भूमिधर बना दिया गया, ये अपनी ज़मीन बेच सकते थे। लगभग प्रत्येक काश्तकार को यह अधिकार आरंभिक भुगतान के बाद प्रदान कर दिया गया लेकिन बाद में कुछ राज्यों में नीति को उदार बनाकर अधिक लोगों को यह अधिकार दिया गया। ज़मीदारों को मुआवज़ा देने के मसले पर काफी बहस हुई। इसके अतिरिक्त काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार दिये जाने, उन्हें भूमिधर बनाये जाने पर भी काफी वाद-विवाद हुआ। अन्ततः भूमिपतियों, ताल्लुकेदारों और जागीरदारों आदि को मुआवज़ा दिया गया।

यह आंकलित किया गया है कि पूरे देश में बिचौलियों को मुआवज़े की राशि में 635 करोड़ रुपये दिये गये।

भूमि सुधारों में काश्तकारी सुधार सबसे महत्वपूर्ण था। बिचौलियों के उन्मूलन से खेत जोतने वाले का अधिकार अपनी ज़मीन पर स्थापित हुआ। इसने एक ऐसी व्यवस्था को समाप्त किया जो शोषण और असमानता पर आधारित होने के साथ-साथ प्रगतिशील कृषि की राह में रोड़ा भी थी। काश्तकारी सुधारों से खेतिहरों का ज़मीन पर अधिकार स्थापित हो गया। इसके पहले खेतिहरों का काश्तकारी संबंध पराधीनता पर आधारित था, अब यह संबंध सरल और विवेकपूर्ण काश्तकारी संबंध में परिवर्तित हो गया। अब सभी काश्तकार भूमिधर और सिरदार के रूप में बदल गये, उन्हें सीधे सरकार को लगान देना था। पूर्ववर्ती भूमिपतियों ने खुदकाश्त ज़मीनों पर भूमिधर अधिकार प्राप्त किया, उन्हें अतिरिक्त भू-राजस्व नहीं देना पड़ा। इसके अतिरिक्त उन्हें भूमि अधिकारों के बदले मुआवज़ा भी

दिया गया।

इन काश्तकारी सुधारों ने गाँवों में भूमि संबंधों में एक स्थिरता कायम की, पर पूरी तरह से सामाजिक और आर्थिक असमानता दूर नहीं हो पायी, क्योंकि भूमिपतियों के पास खुदकाश्त भूमि के रूप में काफी ज़मीन रह गयी। अधिकांश भागों में भूमिपतियों ने स्थिति का अंदाज़ा लगाते हुए, काफी ज़मीन खुदकाश्त के अन्तर्गत शामिल कर ली। उन्होंने उन किसानों को बेदखल कर दिया जो मर्ज़ी पर आधारित काश्तकार थे। इससे सामाजिक असमानता बनी। इसके अतिरिक्त उन्होंने जंगली इलाकों, फलों के बागानों और घास के मैदानों को पारिवारिक बागान घोषित कर खुदकाश्त जमीन में शामिल कर लिया जिस पर पंचायत का अधिकार होने का भय था। इन अनियमितताओं के बावजूद बिचौलियों के अधिकारों के उन्मूलन से ग्रामीण जीवन में एक भारी संस्थागत और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया।

39.4.2 भूमि हदबन्दी

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सामाजिक समानता लाने का प्रयत्न भूमि सुधारों का एक महत्वपूर्ण पक्ष था। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उन राजनीतिक पार्टियों की नीतियों के अनुकूल था जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को नेतृत्व प्रदान किया था। हमारे संविधान में यह शामिल किया गया कि धन और शक्ति का संकेन्द्रण नहीं होगा और समाज के सभी वर्गों में इसका न्यायोचित वितरण होगा। इस प्रकार, विकास के लोकतांत्रिक तरीके से समाजवाद कायम करने पर बल दिया गया। ग्रामीण समाज के परिप्रेक्ष्य में इस उद्देश्य की पूर्ति योजना आयोग की उस नीति के माध्यम से होनी थी जिसमें खेती योग्य ज़मीन रखने की सीमा निर्धारित कर दी गई थी और महत्वपूर्ण बात यह थी कि भूमि हदबंदी का एक स्तर निर्धारित कर दिया गया था। उत्पादकता के लिहाज़ से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र और एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े की ज़मीन के मूल्य में अंतर होता है। इसके बावजूद एक आम सिद्धांत विकसित करना आवश्यक था जिसके आधार पर ज़मीन रखने की सीमा का निर्धारण हो सके। 20वीं सदी के छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में योजना आयोग ने एक पारिवारिक जोत का निर्धारण किया जिसकी आमदनी 1200 रु. सालाना के बराबर हो। इसमें सुझाव दिया गया कि एक परिवार के पास जिसमें 5 सदस्य हों, पारिवारिक जोत की तिगुनी ज़मीन होनी चाहिए अर्थात् इतनी ज़मीन होनी चाहिए जिससे 3600 रु० प्रति वर्ष आमदनी हो सके। इसका निर्धारण भूमि की गुणवत्ता, खेती की तकनीक और उस समय उपस्थित अन्य मुद्दों को ध्यान में रखकर किया जाना था।

भूमि की हदबंदी का कानून 1950 के दशक में ही लागू हुआ पर इसकी कार्रवाई विभिन्न राज्यों में अलग-अलग हुई। उदाहरण के लिए, आंध्रप्रदेश के तेलंगाना प्रदेश में, महाराष्ट्र के मराठवाड़ा में और कर्नाटक के मैसूर में भूमि हदबन्दी का आधार तीन हज़ार रुपये प्रति वर्ष रखा गया और इसके लिए 18 से लेकर 27 एकड़ ज़मीन रखने की बात की गई। पंजाब में हदबंदी की सीमा 30 एकड़ (सिंचाई सुविधा के साथ) और 60 एकड़ (शुष्क इलाका) निर्धारित की गई। विस्थापित व्यक्तियों के लिए सिंचित भूमि 50 एकड़ और शुष्क भूमि की 100 एकड़ की सीमा रखी गई। केरल में ज़मीन की गुणवत्ता के आधार पर यह सीमा 15 से लेकर 32 एकड़ रखी गई। उत्तर प्रदेश में ज़मीन की गुणवत्ता के आधार पर 40 से लेकर 80 एकड़ तक की सीमा निर्धारित की गयी। 50 के दशक की हदबंदी में फिर से सुधार लाया गया और अधिकांश राज्यों में हदबंदी की सीमा और कम की गयी।

भूमि हदबंदी के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि अधिशेष भूमि का वितरण कमज़ोर भूमिहीन और अनुसूचित जातियों के बीच कर दिया जाएगा लेकिन इनके माध्यम से अधिकांश अतिरिक्त भूमि प्राप्त नहीं की जा सकी क्योंकि भूमिपतियों ने अपनी अधिशेष भूमि अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और अन्य लोगों के नाम हस्तांतरित कर दी। इसे बेनामी हस्तांतरण कहते हैं। इसे बेनामी इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें भूमि एक व्यक्ति को हस्तांतरित कर दी जाती है, लेकिन वह व्यक्ति वास्तविक जोतदार नहीं होता है। वास्तविक जोतदार भूमि का असली मालिक बना रहा जिसने हदबंदी के कानून से बचने के लिए बेनामी हस्तांतरण किए। यह एक ऐसी समस्या बन गयी जिसने ग्रामीण भारत के कृषि रूपांतरण को अवरुद्ध कर दिया और यह समस्या आज तक विद्यमान है।

39.4.3 अन्य उपाय

भूमि सुधार की योजना नीति का ज़ोर केवल बिचौलियों की समाप्ति, काश्तकारी सुधारों और हदबंदी तक ही सीमित नहीं था। इसमें भारी निवेश के माध्यम से भूमि की उत्पादकता बढ़ाने पर भी बल दिया गया था। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कदम था—खेतों की चकबंदी। भूमि पर दबाव बढ़ रहा था और परंपरागत कानून के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद भूमि का विभाजन उसके बेटों के बीच समान भागों में होने से भूमि का उपविभाजन हो रहा था और शनैः शनैः खेत टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त हो रहे थे। पचास के दशक के आरंभिक वर्षों में भूमि का उपविभाजन अपनी चरम सीमा पर था। भूमि के इस विभाजन और टुकड़ों-टुकड़ों में बंटे होने के कारण कृषि को काफी लंबे समय से नुकसान उठाना पड़ रहा था। 1953-54 में योजना आयोग के एक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि :

आंध्रप्रदेश में	82.8 प्रतिशत
गुजरात और महाराष्ट्र में	66 प्रतिशत
मध्यप्रदेश में	77.2 प्रतिशत
मैसूर में	70 प्रतिशत
पंजाब में	83.9 प्रतिशत
केरल में	98.4 प्रतिशत
राजस्थान में	62.4 प्रतिशत
उत्तर प्रदेश में	94.9 प्रतिशत

खेत आकार में दस एकड़ से कम थे। खेत के टुकड़ों में विभक्त होने का दृश्य और भी निराशाजनक था। उदाहरण के लिए पंजाब के गाँवों में सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया कि 1898 ऐसे खेत के टुकड़े थे जिनका आकार 1/5 एकड़ से भी कम था और 34.5 प्रतिशत जोतदारों के खेत 25 टुकड़ों में विभक्त थे। देश के दूसरे हिस्सों में भी स्थिति इससे अच्छी नहीं थी। आज़ादी के पहले सहकारी संस्थाओं के माध्यम से चकबंदी का काम किया जा सकता था। यह प्रक्रिया पंजाब में 1921 में शुरू हुई लेकिन दूसरे राज्यों में इसे लागू नहीं किया गया हालांकि सेन्ट्रल प्रोविन्स (आज का मध्यप्रदेश) और बम्बई में क्रमशः 1928, 1929 में इससे संबंधित कानून था। परिणामतः भूमि चकबंदी की शुरुआत व्यवस्थित ढंग से प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही हो सकी।

इस योजना में निम्नलिखित कदम उठाए गये :
- भूमि की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए सर्वेक्षण हुआ
- भूमि की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए इसका वर्गीकरण किया गया
- खेत मालिकों के जोतों का पुनः निर्धारण
- भूमि स्वामित्व को लेकर होने वाले विवादों का निपटारा
- ऐसी भूमि का निर्धारण जो खेती योग्य न हो।

इसका अनउपजाऊ भूमि के रूप में वर्गीकरण करना जैसे वन, भूमि, घास के मैदान, फलों के बाग, तालाब, झील, निवास स्थान आदि।

इस सर्वेक्षण के बाद चकबंदी की प्रक्रिया शुरू हुई जिसमें जोतों के विभाजन को कम करने का प्रयास किया गया ताकि किसान वैज्ञानिक ढंग से खेती कर सकें। इसके अतिरिक्त चकबंदी के माध्यम से किसान अपने खेतों की अच्छी देखभाल भी कर सकता था।

> प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत बंबई में 21 लाख एकड़, मध्यप्रदेश में 29 लाख एकड़, पंजाब में 48 लाख एकड़, उत्तर प्रदेश में 44 लाख एकड़, पेप्सू में जो अब पंजाब का हिस्सा है, 13 लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी की गयी।

1957 के अंत तक लगभग 150 लाख एकड़ की चकबंदी हो चुकी थी और 120 लाख एकड़ की चकबंदी का कार्य चल रहा था। यह प्रक्रिया आज तक चल रही है। भूमि का उपविभाजन आज भी हो रहा है और चकबंदी के माध्यम से इसे रोकने का प्रयास किया जा रहा है। कुछ राज्यों ने ऐसे कानून पास किये हैं जिनके तहत एक सीमा से कम आकार की भूमि का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता है लेकिन भूमि पर पारंपरिक अधिकार संबंधी कानून और भूमि पर जनसंख्या के बढ़ रहे दबाव के कारण जोतों के उपविभाजन को

रोकना बहुत ही कठिन कार्य सिद्ध हो रहा है। ऐसा लगता है कि भूमि सुधार की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी।
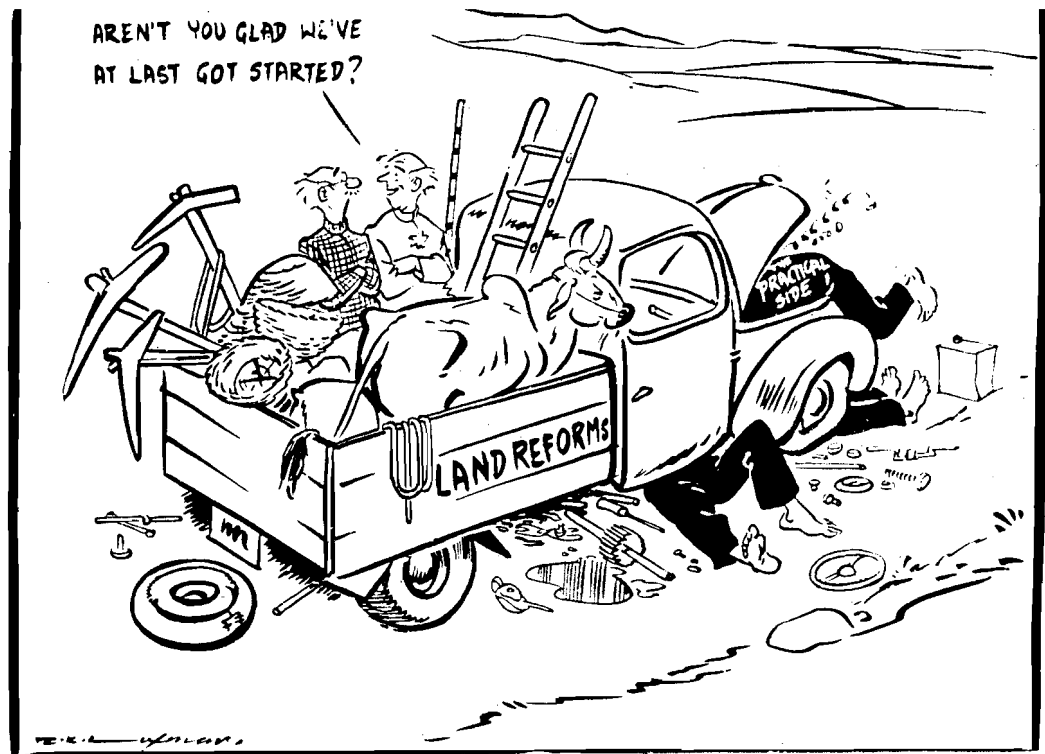
चित्र 4 भूमि सुधारों पर टाइम्स ऑफ़ इन्डिया में आर. के. लक्ष्मण का कार्टून 14 जनवरी, 1959

39.5 भूमि सुधारों के सामाजिक परिणाम

भूमि सुधारों के लिए अपनाये गये जिन उपायों का अध्ययन अब तक आपने किया, उनसे ग्रामीण जीवन की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में भारी परिवर्तन हुए। आर्थिक दृष्टि से कृषि की उत्पादकता हरित क्रांति के दौरान तेज़ी से बढ़ी। किसानों का नया वर्ग जो पहले भूमिपतियों का काश्तकार हुआ करता था, उसको इस भूमि सुधार और योजना आयोग द्वारा लागू किए गए कृषि संबंधी विकास कार्यक्रमों से सबसे ज़्यादा फ़ायदा हुआ। परंपरागत रूप से खेती के पुराने तरीके उनके पास थे और वे कड़ी मेहनत करने में सक्षम थे। इसके साथ ही उन्होंने आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया, जिससे उत्पादकता में वृद्धि हुई। 50-60 के दशकों में जहाँ देश में खाद्यानों की कमी थी वहीं 70-80 के दशकों में देश खाद्यानों के मामले में आत्मनिर्भर हो पाया था। हमारे देश में योजनाबद्ध विकास के तहत भूमि सुधार के कार्यक्रम महत्वपूर्ण उपलब्धि थे। भूमि सुधारों के अतिरिक्त सामुदायिक विकास प्रोजेक्टों, सिंचाई साधनों और उर्वरक के उपयोग में वृद्धि, आधुनिकतम बीजों का उपयोग, आदि ने हरित क्रांति को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने किसानों के बड़े वर्गों को समृद्ध बनाया, ऐसा भूमिपतियों के ज़माने में नहीं हो सकता था। इस प्रकार गाँवों की आर्थिक गतिविधि का आधार विस्तृत हो गया। सामाजिक दृष्टि से लोगों की राजनीतिक हिस्सेदारी भी बढ़ी और इस प्रकार लोकतांत्रिक मूल्यों का फैलाव गाँवों तक हुआ।

लेकिन हरित क्रांति योजना के तहत कृषि समृद्धि और भूमि सुधार के कुछ निषेधात्मक परिणाम भी सामने आए।

- किसानों और भूमिहीन मज़दूरों के बीच की आर्थिक असमानताएँ बढ़ीं क्योंकि भूमिहीन मज़दूरों की तुलना में किसान अधिक समृद्ध हुए।
- देश के विभिन्न गाँवों में सामाजिक तनाव पैदा हुए क्योंकि समृद्ध किसान गाँवों के गरीबों का शोषण करने लगे।
- आधुनिक कृषि, नई तकनीकों जैसे सिंचाई, आधुनिक बीज, रासायनिक खाद और

कीटनाशक दवाओं पर आधारित थी, इसलिए छोटे और सीमान्त किसान अपनी गरीबी और संसाधनों की कमी के कारण इनका इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। इससे सामाजिक असमानता और बढ़ी।

- छोटे और सीमान्त किसान पट्टे पर बड़े किसानों को घाटा सहकर भी अपनी ज़मीन जोतने के लिए देने लगे।

कई जगहों पर बटाईदारी और मौखिक काश्तकारी (बिना लिखा पढ़ी के दी गई काश्तकारी) एक बार फिर उभर कर सामने आयी। छोटे और सीमान्त किसानों की कमज़ोर आर्थिक स्थिति के कारण खेती में फिर से कम पूंजी लगने लगी। इस समस्या का समाधान खेती के सहकारी तरीके से हो सकता था लेकिन कुछ सामाजिक कारणों से जैसे जाति और वर्गों में विभाजन आदि के कारण भारत में ऐसा संभव न हो सका। गाँवों में जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव और रोज़गार के अभाव के कारण यह स्थिति और भी विकट हो गयी।

इन समस्याओं के समाधान के लिए कई कदम उठाने पड़ेंगे। कृषि को उद्योग के रूप में परिणत करना होगा ताकि यह रोज़गार प्रदान कर सके। जहां कहीं भी संभव हो स्वेच्छा के आधार पर सहकारी खेती को बढ़ावा दिया जाये और इस व्यवस्था को पूर्ण प्रशासनिक और आर्थिक समर्थन प्रदान किया जाये। भूमि सुधारों में जो कमी रह गयी है उसे सख्त प्रशासनिक तरीकों से दूर करना होगा। अन्तिम रूप से यह कहना संगत होगा कि औद्योगिक और कृषि नीति में पूँजी संसाधनों, मूल्य निर्धारण, खाद्यानों को बाज़ार में बेचने आदि से संबंधित एक विवेकपूर्ण न्यायोचित संबंध का आधार बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके बाद ही गाँवों में रहने वाले लोग खुशहाल हो सकेंगे क्योंकि उनका एकमात्र आधार कृषि ही है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़िए और सही (✓) और गलत (X) का निशान लगाइये।
   i) भारत सरकार द्वारा अपनाये गयें उपायों का उद्देश्य बिचौलिये वर्ग से किसानों को मुक्त कराना था। (   )
   ii) काश्तकारी सुधारों से भारतीय समाज की आर्थिक और सामाजिक असमानता समाप्त हो गयी। (   )
   iii) भूमि हदबंदी के पीछे उद्देश्य यह था कि अधिशेष भूमि को प्राप्त कर उन्हें ग्रामीण समाज के भूमिहीन वर्गों के बीच बाँट दिया जाये। (   )
   iv) खेतों की चकबन्दी का काम सबसे पहले पंजाब में शुरू हुआ। (   )

2) आज़ादी के बाद लागू किये गये भूमि सुधारों के सामाजिक परिणामों का उल्लेख करें। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

39.6 सारांश

इस इकाई में यह कोशिश की गयी है कि आज़ादी के पहले और बाद में हुए कृषि सुधारों से आप परिचित हो जायें। आज़ादी के समय भारतीय कृषि की दशा दयनीय थी। इसकी निम्न कमियाँ थीं।

- विकास की गति अत्यंत धीमी थी।
- कम उत्पादकता
- शोषणात्मक काश्तकारी व्यवस्था
- निवेश और विस्तार की कम से कम गुंजाइश
- बिचौलियों (ज़मींदारों, जागीरदारों और महाजनों) का वर्चस्व, जिनकी रुचि अल्पावधि हितों में थी।

इस व्यवस्था में सबसे ज़्यादा हानि खेतिहरों को हुई। खुद कृषि को इससे काफी हानि पहुंची। यह औपनिवेशिक शासन का एक अभिशाप था।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय सरकार द्वारा दुहरी नीति अपनायी गयी।

- भारतीय कृषि की उन बुराइयों को समाप्त करने की कोशिश की गयी, जो उसे दीमक की तरह चाट रही थीं। इस प्रक्रिया में पुरानी भूमि व्यवस्थाओं और बिचौलियों के वर्चस्व को समाप्त कर दिया गया।
- दूसरी तरफ भारतीय कृषि के विकास और विस्तार के लिए नये सिरे से प्रयास प्रारंभ किया गया। ऐसा कृषि को योजनाबद्ध आर्थिक विकास का अंग बनाकर ही किया जा सकता था। इस व्यवस्था के तहत कई सुधारों के कई उपाय अपनाये गये, मसलन भूमि की हदबन्दी, चकबन्दी आदि।

इन सुधारों का परिणाम काफी प्रभावकारी सिद्ध हुआ। इससे कृषि में काफी बदलाव आया और इसके विकास की गति तीव्र हुई। इन सकारात्मक इच्छुक परिवर्तनों के बावजूद कुछ नकारात्मक परिवर्तन भी सामने आये। इनका वर्णन भाग 40.5 में हुआ है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि भारत में हुए भूमि सुधारों का प्रमुख योगदान यह है कि इसने भारतीय कृषि को एक दिशा प्रदान की और विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

39.7 शब्दावली

शुष्क भूमि : ऐसी भूमि जहां सिंचाई सुविधाएं न हों।
हदबंदी : एक कानूनी पाबंदी, जिसके अनुसार कोई व्यक्ति एक सीमा तक ही ज़मीन रख सकता है।
पंचवर्षीय योजना : 1951-52 में भारत सरकार द्वारा योजनाबद्ध आर्थिक विकास का एक प्रयास (प्रत्येक योजना के लिए पाँच वर्षों का समय निर्धारित हुआ और उसी के अनुसार लक्ष्यों का निर्धारण हुआ)। योजनाबद्ध विकास की यह पद्धति सोवियत संघ के प्रयोगों पर आधारित थी।
काश्तकारी सुधार : काश्तकारों को सुरक्षा और संरक्षण देने संबंधी सुधार।

39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 39.3

2) बहस भूमि सुधार के दो प्रतिरूपों पर केंद्रित थी सहकारी खेती और व्यक्तिगत खेती। सहकारी खेती की धारणा समुदाय वादी दृष्टिकोण और व्यक्तिगत खेती की धारणा पूंजीवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। देखें भाग 39.2
3) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓
2) अपने उत्तर में सकारात्मक पहलुओं (ग्रामीण समृद्धि, आर्थिक गतिविधियों का प्रसार, ग्रामीण क्षेत्रों की बढ़ती राजनीतिक हिस्सेदारी और व्यापक लोकतंत्रीकरण) और नकारात्मक परिणामों (आर्थिक असमानता, गांवों में बढ़ता सामाजिक तनाव आदि) का उल्लेख करें।